Available online at http://www.nrjp.co.in

Journal of Management Science,
Operations & Strategies, (E- ISSN 2456-9305)
Vol. 4, Issue, 01. 48-54p, April 2020

National Research & Journal Publication

Review Article

efgyk l'kfädj.k dh pqukSrh : ,d leh{kk (ckSf)d foe'kZ dk ifjis{; eas)

डॉ० आदित्य कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर स्वामी विवेकानंद पी० जी० महाविद्यालय पुवायां शाहजहांपुर

Abstract

पितृसत्ता एक ऐसी विचारधारा है जो पारंपरिक मान्यताओ का अनुकरण तार्किकता व वैज्ञानिकता के स्थान पर केवल आस्था और प्रागनुभवो के आधार पर करती है। यह सामाजिक,राजनीतिक और नैतिक मान्यताओ का समग्र है जो पुरानी मान्यताओ पर जोर देते हुए नवीन विचारधारा को आजमाऐ बिना पुरानी व्यवस्था को बनाये रखने पर जोर देती हैं।डेविड हयूम और एडमण्ड बर्क रूढिवाद के प्रमुख उन्नायक माने जाते है। समकालीन विचारको में माइकेल ओकशॉट को रूढिवाद का प्रमुख सिद्वान्तकार माना जाता है। वर्तमान समय में सामाजिक रूढियो व पितृसत्ता के सन्दर्भ में हमारे युवाओ के विचारो पर यह अध्ययन आधारित हैं। प्रस्तुत विषय पर युवा लोगो के साथ गोरखपुर के कॉलेज और विश्वविद्यालय में अध्ययन किया गया है। कॉलेजो के सत्रो में मुख्य रुप से शिक्षको से थोडा समय लेकर युवाओ से लिंग,यौन ,हिसा और कानून के सन्दर्भ में बुनियादी बातचीत शुरु किया गया।इसके अलावा लिंग, यौन पर अन्तरपीढीगत संवाद करने के लिए छात्रो को अनुसूची साक्षात्कार की सुविधा प्रदान की गई थी।

Copyright©2020 ***डॉ० आदित्य कुमार****This is an open access article for the issue release and distributed under the NRJP Journals License, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*

वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी सदृश्य आधुनिक समय भी यदि अनेक विलंबनाओं, विडंबनाओं एवं विरोधाभासों का आखेट हैं, तो इसका सबसे बड़ा कारण स्वयं मनुष्य की वे प्रवृत्तियॉ हैं, जिन्हें स्वार्थ, अहं, वर्चस्ववादी मानसिकता व भौतिक सुख प्राप्ति की असीम लालसा इत्यादि का संबोधन दिया जा सकता है। अपनी इन्हीं नकारात्मक प्रवृत्तियों की अग्रिम पंक्ति में स्थित नर जाति ने नारी समाज को प्रत्येक अवसरों पर अपमान, अवमूल्यन, अयोग्यता एवं उपेक्षा को प्रोत्साहित करने वाले घातक प्रहारों से आहत किया है। अपने इन ''घातक प्रहारों को बड़ी चतुराई से इस जाति ने धर्म, परंपरा, संस्कृति और सभ्यता सदृश्य आवरण भी प्रदान कर दिये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि स्त्री समाज का इस प्रकार मानसिक अनुकूलन (conditioning) हो चुका है कि पुँसवादी मानसिकता को प्रशस्त करने वाले धर्म और संस्कृति इत्यादि कि वह स्वयं सबसे बड़ी पहरूआ बनने की आकांक्षा के वशीभूत हो गयी है। अर्थात् नारी जीवन, अपना आकार पानी के समान अपने वर्तन के अनुरूप निर्धारित करने लगा। फलतः स्त्रियॉ गर्भ से लेकर प्रज्ञा तक प्रत्येक स्तर पर छली जाने के लिए अभिशप्त हैं। विडंबनापूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियों का यह अभिशप्त जीवन वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में भी निरंतर है।

efgyk l'kfDrdj.k dh i`"BHkwfe dk iklafxdrk:

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता', कदाचित किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति में नारी के लिए इतना महान उद्‌भोष उपलब्ध नहीं होगा, यह सत्य है, परन्तु यथार्थ यह भी है कि कन्या भ्रूण हत्या से लेकर जीवन के प्रत्येक–सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक,

आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में महिलायें सभ्यता के प्रारंभ से ही लिंगभेद का आखेट होती चली आ रही है। 'लगभग पॉच लाख कन्याओं की हत्या प्रतिवर्ष गर्भ में ही कर दी जाती है।'[1] 'आंकड़े बताते हैं कि पिछले 20 वर्षों में भारत में महिलाओं के साथ हुए बलात्कार में 40 प्रतिशत, अपहरण के प्रकरणों में क्रमशः 50 प्रतिशत तथा छेड़छाड़ व दहेत हत्या के अपराधों में क्रमशः 60 प्रतिशत व 150 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है।'[2] 'विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में हर 54 मिनट पर एक महिला के साथ बलात्कार होता है। सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज के आंकड़े के आंकड़े बताते हैं कि भारत में हर दिन 42 महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है, यानि हर 35 मिनट में एक बलात्कार...'[3]।

'भारत की कुल कार्यशक्ति का मात्र 6 प्रतिशत महिलायें हैं। वरिष्ठ प्रबंधन स्तर पर मात्र 4 प्रतिशत महिलायें हैं।'[4] इन कतिपय तथ्यों से यह स्वीकारना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि महिला सशक्तिकरण का प्रश्न वर्तमान समय में भी अत्यन्त संवेदनशील प्रश्न है। नारी समाज की सोचनीय स्थिति के सन्दर्भों में तो महिला सशक्तिकरण का प्रश्न गंभीर है ही, राष्टa की संतुलित प्रगति के परिप्रेक्ष्य में भी स्त्री समाज का सर्वोन्मुखी विकास एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

ckf) d foe'k dk HkkokFk:

आदि काल से जिस प्रकार विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से महिला समाज का पुंसवादी दृष्टिकोणों को स्थापित करने वाली मानसिकता के अनुरूप अनुकूलन का कार्य किया जाता रहा है, उसके क्षरण के कार्य का प्रारंभ भी मानसिक स्तर से ही करना होगा। अर्थात् महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करने वाली स्थितियों के निर्माण सम्बन्धी उद्यमों को वांछनीय सफलता तक प्राप्त होगी, जब उनके अनुकूल एक वैचारिक और बौद्धिक धरातल की रचना हो जायेगी। वैचारिक और बौद्धिक धरातल की यह 'रचना' किसी प्रकार की विसंगति व विलंबना के कारण विकलांग न होने पाये, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है, मानव समाज के प्रत्येक अंश की इस 'रचना' में जीवंत सहभागिता हो। स्पष्ट है कि महिलाओं की उपेक्षा सम्बन्धी स्वाभाविक प्रवृत्ति जो परंपरा सभ्यता एवं संस्कृति में ही व्याप्त है, के द्रवीकरण हेतु सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं धार्मिक सभी स्तरों के अभिजन समूह एवं निम्न स्तर के कार्यकारी तत्वों को आवश्यक बौद्धिक विमर्श हेतु आमंत्रित, प्रोत्साहित एवं प्रेरित करना होगा।

इस प्रक्रिया में स्त्री समाज का भी सम्मिलन अनिवार्य बनाना होगा, क्योंकि शताब्दियों से जिस वैचारिक और मानसिक पुंसवादी दृष्टिकोणों से वे स्वयं को 'देवी', 'श्रद्धा', 'सती' और 'आदर्श नारी' इत्यादि ढकोसलों से फुसलाती रही हैं, उनका प्रक्षालन भी अनिवार्य है। कदाचित तभी वे 'स्व' अथवा 'अस्मिता' इत्यादि शब्दों के वास्तविक अर्थो से स्पंदित हो सकेंगी। इस 'बौद्धिक विमर्श' का केन्द्रीय विषयवस्तु होगा महिला के प्रति मानवीय दृष्टिकोण मात्र की स्थापना करना। इस बौद्धिक विमर्श को अतिबौद्धिकरण, अति राजनीतिकरण एवं दैवीय स्पर्श से भी अशेष रहना होगा। तभी ऐसे किसी विमर्श को प्रभावशाली व साध्योन्मुख बनाया जा सकेगा।

ckf)d foe'k ,frgkfld lUnHkZ e:

महिला सशक्तिकरण के प्रश्न पर बौद्धिक विमर्श का कभी–भी अकाल नहीं रहा है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी से ही इस प्रकार के बौद्धिक विमर्श को स्वीकारोक्ति मिलने लगी थी। 'अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के विचारक मेरी उलनस्टोक्राफ्ट हैरियट टेलर व जान स्टुअर्ट मिल जैसे सभी नारीवादियों ने दार्शनिक जान लॉक और रूसों के दर्शन की आलोचना यह कहते हुए की थी कि इनके दर्शन में वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक परिवर्तन की चर्चा तो है, किन्तु इनकी उदारवादी विचारधारा स्त्री–पुरूष को समान अधिकार दिलाने में असमर्थ है। तत्पश्चात् उदारवादियों ने ऐसी सामाजिक संरचना की स्थापना की बात की, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का महत्व हो, उन्हें समान सुविधा मिले।' परन्तु इस काल का उदारवाद मात्र इतना ही प्रभाव स्थापित कर सका कि अमेरिका जैसे राष्ट्a में समान अधिकार संशोधन विधेयक पास हो गया, यद्यपि समाज से पितृसत्तात्मक दमनकारी नीतियों का उन्मूलन अभी भी एक दिवास्वप्न था।

उदार नारीवाद का उल्लेखनीय आन्दोलन बीसवीं सदी के साठ के दशक से प्रारंभ हुआ माना जा सकता है।' इस युग के प्रमुख विचारक हैं बेला अबलेक्स बेही Ýीडा, एलिजाबेथ हाउसमैन आदि'[6] इनका ये मत था कि स्त्री किसी भी स्तर पर पुरूष से ही नहीं है। पुरूषों को मिलने वाली सुविधाजनक स्थितियॉ यदि महिलाओं को मिले तो वे प्रत्येक स्थिति में पुरूषों के बराबर क्षमतावान सिद्ध होंगी। इस काल की विचारधारा की प्रमुख मांगे थीं – 'महिलाओं को गर्भपात का अधिकार होना चाहिए, स्त्री को मानवीय गरिमा मिलनी चाहिए एवं पितृसत्तात्मक संरचना को बदला जाये दृ इस समय की उल्लेखनीय पुस्तकें भी 'सेकेन्ड सेक्स' ¼सिमोन द बुवा½' सेक्सुअल पालिटिक्स' ¼केट मिलेट½ 'डायलेक्टिक ऑफ सेक्स' ¼सुलामिथ फायरस्टोन½ 'वुमैन स्टेट' ¼जूलियेट मिशेल½' [7] इन पुस्तकों में उल्लेखनीय तथ्य थे– स्त्री मुक्ति सम्बन्धी सारे सिद्धान्तों का स्रोत स्त्री का निजी जीवन है, स्त्री को दमन के विरूद्ध अपनी वाकहीनता से मुक्त होकर, सामाजिक मंचों पर मुखर होना होगा, स्त्री दमन का मुख्य कारण व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा है। अर्थात् स्त्री दमन का मुख्य कारण पूंजीवाद है।

पितृसत्ता नहीं और आर्थिक रूप से स्वालंबी स्त्री ही पुरूषों के समान जीवन जी सकती है। बीसवीं सदी के सातवें दशक से नौवें दशक तक महिला मुक्ति सम्बन्धी बौद्धिक विमर्श की केन्द्रिय समस्या थी कि स्त्री पराधीनता किसी भी मूल्य पर समाप्त होनी चाहिए। इसका मानना था कि स्त्री श्रम द्वारा उत्पादन की दो प्रणालियां हैं। एक बाध्य जगत में उत्पादन की तथा दूसरी गृहस्थी में जहॉ महिला दिन–रात मूल्यहीन श्रम करती है। इस काल के विमर्श की यह सशक्त आकांक्षा थी कि महिला श्रम के इस पक्ष का समाज द्वारा आर्थिक मूल्यांकन होना चाहिए, साथ ही साथ, मात्र आर्थिक संघर्ष ही नहीं, अपितु 'स्त्री–पुरूष का यौन संघर्ष और इससे जनित स्त्री के प्रति यौन हिंसा एवं उत्पीड़न का भी सामाजिक आन्दोलन को संधान करना होगा। इस युग के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख चिन्तक थे– ग्रामशी, डोना हार्वे एवं शीला रोवॉथम। 'ग्राक्शी ने पारिवारिक सम्बंधों के निरंतर संघर्ष पर काफी प्रकाश डाला और

इसे जन क्रांति का एक प्रभावी तथा निर्णायक तत्व माना।'[8] इस काल में सर्वप्रथम महिला सशक्तिकरण सम्बन्धी बौद्धिक विमर्श के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि अपने यौन जीवन में भी स्त्री को किस प्रकार शोषित एवं उत्पीड़ित होना पड़ता है। इसी समय के बौद्धिक विमर्श ने यह भी स्पष्ट किया कि यह कहना कि पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था एवं महिला की तत्सम्बंधित पराधीनता में ही समाज का हित निहित है, मात्र एक षड़यंत्र है और 'स्त्रियोचित गुणों का निर्धारण स्त्री की जैविकता से नहीं बल्कि स्त्री की राजनैतिक शक्तिहीनता तथा सामाजिक सम्बन्धों में अधीनस्थ भूमिका की स्वीकृति से होता है।

¼जूलिया क्रिस्तोवा ने स्पष्ट कहा कि½ वह हमेशा निषेध अर्था तो वह नहीं है (lack) के द्वारा ही व्याख्यायित होती रही है। स्त्री प्राकृतिक संरचना नहीं बल्कि सत्ता की एक सामाजिक संरचना है और ... स्त्री संघर्ष को क्रांतिकारी वर्गीय संर्घष तथा साम्रज्यावाद के विरूद्ध अन्य संघर्षो से अलग नहीं किया जा सकता।'[9] स्पष्ट है कि बीसवीं सदी के नौवें दशक की समाप्ति तक यह समझ हो चुकी है कि महिला सशक्तिकरण का पथ केन्द्रीय सत्ता के राजमार्ग से होकर ही निर्मित हो सकता है। नारी को स्वयं के सबला होने के शास्त्र एवं शस्त्र का पल्लवन सत्ता की पौधशाला में बीजारोपण के माध्यम से ही करना होगा।

ckf)d foe'k bDdhloh 'krkCnh e%

इक्कीसवीं शताब्दी के सिंहद्वार तक आते–आते महिला सशक्तिकरण से सम्बद्ध बौद्धिक विमर्श कतिपय यथार्थ तथ्यों से अनभिज्ञ नहीं रहा, यथा–नारी भी एक सामान्य मनुष्य है जिसे श्रद्धा, देवी, सती और आदर्श की पराकाष्ठा का पर्याय होने की कोई आवश्यकता नहीं है, सत्ता में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता महिला सशक्तिकरण का प्रस्थान बिन्दु है और महिला सशक्तिकरण को वास्तविक पैनापन आर्थिक स्वावलम्बन के माध्ये से ही मिल सकेगा, तथा इस 'आर्थिक' स्ववलम्बन' का स्थायी आधार शिक्षा मात्र है।

वस्तुतः वर्तमान शताब्दी के एक दशक की समाप्ति के उपरान्त नारीवादी विमर्श को दो अंशों में विभाजित कर देखा जा सकता है। प्रथम अंश इस विचारधारा का समर्थक रहा है कि स्त्री अशक्तता से महिलाओं को तादात्मीकरण कर लेना चाहिए, महिला की 'माता' छवि उसकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है और स्त्री दैवीय गुणों का सजीव संकलन है। महिला सशक्तिकरण पर केन्द्रित बौद्धिक विमर्श का द्वितीय अंश नारी को एक सामान्य मनुष्य की श्रेणी में रखता है और यह मानता है कि उसे पुरूषों से श्रेष्ठ व महान बनने की आवश्यकता नहीं है, अपितु महिलायें भी लाभ, लोभ, काम, अर्थ, प्रतिस्पर्द्ध और महत्वकांक्षा सदृश्य भावनाओं से संचालित होती है तथा स्त्रियों को भी सत्ता में भागीदारी चाहिए। प्रख्यात विचारक नाओमी वुल्फ इन दोनों अंशों में प्रथम के लिए 'उत्पीड़न से ग्रस्त नारीवाद' (victim feminism) और द्वितीय अंश के लिए 'शक्ति आधारित नारीवाद (power feminism) सम्बोधन का प्रयोग करती है।

शक्ति आधारित नारीवादी विमर्श को नाओमी वुल्फ प्रासंगिक मानती है, क्योंकि यह स्त्री–शक्ति को यथार्थ मानवीय क्षमता के रूप में चिन्हित करना चाहता है। उनका कहना है कि '.... समयय के साथ–साथ सिर्फ अपनी कमजोरियों को देखते रहने और अपनी ताकत पर ध्यान न देने से हम धीरे–धीरे चुकते चले जाते हैं।'[10] यक्ष प्रश्न

यह है कि महिला सशक्तिकरण को पुष्ट करने वाले बौद्धिक विमर्श का स्वरूप भविष्य में किन तत्वों पर आधारित होना चाहिए? इस सम्बन्ध में नाओमी वुल्फ की यह मान्यता है कि महिलाओं को मर्दों के समान अथवा समकक्ष स्थितियों की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए, 'महिला को केवल 'महिला' रहने में संकोच क्यों हो? ... बाजार, राजनीति और अर्थव्यवस्था–समाज के इन तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में यह सोच धीरे–धीरे जगह बनाने लगी है कि महिलाओं की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता'[11]।

महिला सशक्तिकरणका पथ 'हीन–ग्रंथि' के निर्जीव वातावरण से निकलने पर साध्य अभिप्रेत कदापि नहीं होगा, अपितु नारी होने की सुखद व समानजनक अनुभूति के आधार पर निर्मित होने वाले बौद्धिक विमर्श के गर्भ से ही महिला सशक्तिकरण का यथार्थ शंखनाद संभव होगा। इसीलिए नाओमी वुल्फ कहती हैं कि 'नारीवाद का अगला दौर सेक्सुअल 'हॉ' और सेक्सुअल 'ना' कहने के बारे में होना चाहिए.... जो हिंसा की शिकार हैं, उन्हें उनकी बराबरी का अहसास दिलाना ही नारीवाद का अगला दौर होना चाहिए, क्योंकि स्त्री–पुरूष का सम्बंध स्त्री की शक्ति को कम नहीं करता बल्कि उसकी पुष्टि करता है। महिलाओं द्वारा सत्ता व धन हासिल करना भविष्य के फेमनिज्म का एक अनिवार्य अंग है।'12 अर्थात् भविष्य का बौद्धिक विमर्श स्त्री को एक सम्पूर्ण मनुष्य मात्र के स्वरूप में देखना चाहता है, जिसे समाज नागरिक का सम्मान प्रत्येक परिस्थितियों में मिलना अवश्यंभावी हो।

Hkkjro"kZ esa ckf)d foe'kZ:

महिला सशक्तिकरण पर केन्द्रित बौद्धिक विमर्श भारतवर्ष में भी समय–समय पर प्रकाश में आता रहा है, परन्तु इस बौद्धिक विमर्श में नियमितता, निरंतरता और सैद्धान्तिकी का नितांत अभाव रहा है। महिला सशक्तिकरण से सम्बंधित बौद्धिक विमर्श की एक न्यूनता और रही हैं कि उसके प्रकाशन का विधिवत प्रायोजन भी संकटग्रस्त रहा है। यद्यपि अठारहवीं शताब्दी से भारतवर्ष में पुरूष वर्चस्व के विरूद्ध नारी–स्वर प्रस्तुत होने लगे थे। आधुनिक सन्दर्भों में 2002 में एक पुस्तक आयी, जिसका शीर्षक है 'द वायलेंस ऑफ डेवलपमेंट'। यह पुस्तक कारिन कपाड़िया द्वारा संपादित है। इस पुस्तक के अन्य रचनाकार है –निर्मला, बनर्जी, पद्मिनी स्वामिनायन, कल्पना शर्मा, उर्वशी बुटालिया, निशा श्रीवास्तव, रेवती नारायणन, सीमंतनी निरंजना, शैल मायाराम, एस.आनंदी और समिता सेन।

इस पुस्तक में भारतीय जीवन के चार क्षेत्रों–आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक में स्त्रियों की आज की स्थिति पर विचार किया गया है। .... लेखिकायें यह मानते हुए भी कि इन सभी क्षेत्रों में विकासजन्य प्रगति हुयी है.... यह बताती हैं कि हमारे यहॉ स्त्री और पुरूष के बीच भयंकर असमानतायें मौजूद हैं, तो तमाम तरह के विकास के बावजूद कम नहीं हुयी हैं, बल्कि बढ़ती गयी है और उनकी सबसे बुरी मार स्त्रियों पर पड़ी है। ... पूरा विकास स्त्रियों के प्रति पूर्वग्रह रखते हुए हुआ है, अतः यह एक हिंसक विकास है और स्त्रियॉ उसकी हिंसा की शिकार हुयी है।'[13]

वस्तुतः भारतवर्ष में हिन्दी माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला बौद्धिक विमर्श जीवंत वैचारिक अथवा प्रबुद्ध धरातल के अभाव से

ग्रसित रहा है। 'हिन्दी के दलित लेखन के पास अंबेडकरवाद जैसा वैचारिक आधार था, हिन्दी के स्त्री लेखन ¼बौद्धिक विमर्श½ के पास वैसा कोई वैचारिक आधार नहीं था। .... कहीं वह संसार की समस्त स्त्रियों के द्वारा संसार के समस्त पुरूषों के वर्चस्व का विरोध करने वाली विचारधारा के रूप में समझा गया, तो कहीं स्त्री की यौन–स्वच्छंदता की वकालत करने वाले विचार के रूप में, ... ज्यादातर लेखिकायें तो इसी असमंजस में पड़ी रहीं कि स्त्री लेखन और पुरूष लेखन में कोई भेद करना भी चाहिए कि नहीं ...।'[14] महिला सशक्तिकरण के प्रश्न की यह भी एक विडंबना रही है कि सम्बद्ध बौद्धिक विमर्श वैचारिक दृढ़ता के ठोस सैद्धान्तिक भित्ति की प्राप्ति से वंचित रहा है। फलतः महिला सशक्तिकरण का प्रश्न अनेक पुंसवादी षड़यंत्रों का वर्तमान अत्याधुनिक काल में भी आखेट है।

ckf) d foe'k dk vHkh"V Lo:i:

विश्लेषणोपरांत स्पष्ट होना कठिन नहीं है कि महिला सशक्तिकरण का प्रश्न संतुलित, एकमेव सामूहिक व वैश्विक स्वरूप तथा मात्र न्याय प्राप्ति सदृश्य ध्येय को स्वीकारने की दृढ़ इच्छाशक्ति के अभाव से ग्रसित रहा है। महिला सशक्तिकरण के प्रश्न को अभीष्ट प्रत्युत्तर तभी प्राप्त होगा, जबकि वह मात्र महिला सशक्तिकरण को अपना लक्ष्य बनाये एवं किसी अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा, अर्थहीन ग्रंथि एवं मूल्यहीन धर्म व संस्कृति से स्वयं को सुरक्षित रखे। इस सम्बन्ध में कतिपय बिन्दुओं को अग्रवत प्रस्तुत किया जा सकता है –

- महिला सशक्तिकरण के ध्येय से अभिप्रेत बौद्धिक विमर्श को अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा इस साक्ष्य की प्राप्ति पर केन्द्रित करना होगा कि स्त्रियों को न्याय प्रत्येक स्थिति में प्राप्त होना चाहिए।
- स्त्री को क्या चाहिए? इस प्रश्न पर विचार स्त्रियों को करना होगा। प्रायः ऐसे प्रश्नों पर विमर्श का एकाधिकार पुरूषों का ही दिखायी देता है।
- भारतवर्ष में महिला को एक नागरिक के समान समस्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व पारिवारिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक सम्प्रदाय की निजी विधियों को भारतीय संविधान की सीमा में लाना होगा।
- महिला सशक्तिकरण की राह में सबसे बड़ा रोड़ा पुंसवादी मानसिकता है। इसी पुंसवादी मानसिकता से ही पूंजीवाद, पितृसत्ता एवं धर्म व संस्कृति का वह स्वरूप निर्मित होता है, जिसके दुष्प्रभाव से महिला प्रथम श्रेणी का नागरिक बनने से वंचित है। इसलिए यह स्वीकारा जा सकता है कि '...पितृसत्ता केवल स्त्री–पुरूष संबंध का मसला नहीं है।वह समूची समाज–व्यवस्था का मसला है।... बड़ी सावधानी से, बड़े सृजनशील ढंग से ... पितृसत्ता का उन्मूलन समूची सामाजिक व्यवस्था को बदलने से ही हो सकता है।'[15]
- 'सेकेंड सेक्स' में ठीक ही लिखा है कि औरत की पहली लड़ाई अर्थ की दुनिया से शुरू होती है।' अतः भारतवर्ष में भी सम्पन्न होने वाले बौद्धिक विमर्श को अपना लक्ष्य महिला स्वावलम्बन एवं नारी शिक्षा के अधिकतम प्रचार–प्रसार व तत्सम्बंधित जागरूकता की स्थापना पर केन्द्रित करना होगा।

वास्तव में, महिला सशक्तिकरण का प्रश्न और प्रत्युत्तर दोनों का प्रारंभ मानसिकता

के स्तर से ही होता है। अतः यह स्वीकारा जा सकता है कि इस पृष्ठभूमि में बौद्धिक विमर्श की भूमिका उस प्रेरक एवं मार्गदर्शक की है, जिसके सही निर्देशन उपरांत महिला सशक्तिकरण का मात्र कुपाठ ही निषिद्ध नहीं होगा, अपितु उसकी सही दिशा एवं मानवीय दशा का पथ भी प्रशस्त होगा। 'नारीवाद ¼महिला सशक्तिकरण½ न तो राजनीति की चेरी है, न ही उसकी दुश्मन! उसकी चिंता के मूल में वे जीवनमूल्य हैं,

जो स्त्रियों समेत पूरी मानव जाति के हित में है। ...आने वाले समय में नारीवाद नकली नाटकीय जुझारूपने के तेवर त्यागकर एक उदार एवं संवेदनशीलता और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर उस परिवेश का जायजा लेगा, तो आज ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की छातीफाड़ अमानवीय और जीवन विरोधी स्पर्धा में पगलाया हुआ है। इसके लिए जरूरी बनेगा कि नारीवाद सिर्फ राजनीति ही नहीं, अर्थजगत तकनीकी विज्ञान और मीडिया सभी से जुड़े अपने लिए कुछ झूठे पूर्वाग्रहों को साहसपूर्वक त्यागे और पूरी मानवजाति के पक्ष में खड़े होने और विहंगम पड़ताल करने का ठोस आधार बनाया'[16]। महिला सशक्तिकरण सम्बन्धी बौद्धिक विमर्श को अपना निर्देशन इसी प्रकार के वैचारिक धरातल से प्राप्त करना होगा।

lUnHkZ & lwph:

1. संपादकीय ¼2006½ 'मर्डर इन द वूम्ब', टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 11.1.2006।
2. रायजादा अजीत ¼2000½ ' महिला उत्पीड़न समस्या और समाधान', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 162।
3. वासुदेव शेफाली, रेणुका मेथिल ¼2002½ 'बलात्कार' इंडिया टुडे ¼हिन्दी½, नई दिल्ली, 11.9.2002, पृ. 22–23।
4. बनर्जी रूमू ¼2005½ 'वोमेन जस्ट ...' टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली 16.12. 2005.
5. खेतान प्रभा ¼2000½ 'स्त्री विमर्शः इतिहास में ...' हंस, संपा. राजेन्द्र यादव, नई दिल्ली, पृ. 36, 37।
6. ———वही———, पृ. 37।
7. ———वही———
8. ———वही———, पृ. 38।
9. ———वही———, पृ. 40।
10. सक्सेना, प्रगति ¼2001½ 'इक्कीसवीं सदी का नारीवाद', हंस संपा. राजेन्द्र यादव, नई दिल्ली, पृ. 76।
11. ———वही———, पृ. 77।
12. ———वही———।
13. कुमार उत्पल ¼2004½ 'दि वायलेंस ऑफ डेवलपमेंट', आज का स्त्री आन्दोलन, संपा, रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय शब्द संधान, नई दिल्लीख पृ. 60, 61 ।
14. उपाध्याय रमेश ¼2004½ 'मुक्ति का सवाल कहॉ गया?' आज का स्त्री आन्दोलन, संपा. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 69।
15. 'आज का स्त्री आन्दोलन', ¼2004½ संपा. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 23।
16. पांडे मृणाल ¼2000½ 'स्त्री और सदी का अवसान', हंस संपा. राजेन्द्र यादव, नई दिल्ली, पृ. 166।